दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया में महामहिम राज्यपाल, श्री रामनाथ कोविन्द का संबोधन

(दिनांक– 25.09.2016, समय–3:00 बजे अपराह्न)

मगध विश्वविद्यालय एवं इन्स्टीच्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रमुख रूप से उपस्थित मगध विश्वविद्यालय के कुलपति, मो॰ इश्तियाक जी, इन्स्टीच्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज, नई दिल्ली के चेयरमैन डॉ॰ मो॰ मंजूर आलम जी, सचिव प्रो॰ जेड॰एम॰ खान जी, लेफ्टीनेंट जनरल श्री आर॰के॰ शर्मा जी, (एम॰एम॰) बुद्धिस्ट स्टडीज के विभागाध्यक्ष श्री सुशील कुमार सिंह जी, अतिथिगण, शिक्षकगण, विद्यार्थीगण, बुद्धिजीवीगण, मिडिया – प्रतिनिधिगण, देवियों एवं सज्जनों!

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता और सम्मान के जो तत्व विद्यमान होते हैं, उनकी वैचारिक और भावनात्मक पृष्ठभूमि तलाशने तथा भारत की राष्ट्रीय एकता में समस्त धर्मों की सदाशयता के महत्त्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करने के उद्देश्य से आपने जो राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की है, उसके समापन–सत्र को सम्बोधित करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। ''अंतर्धार्मिक संवाद की महत्ता और मानव के लिए उसके निहितार्थ'' विषयक आज सम्पन्न हो रही इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का विषय अत्यन्त प्रासंगिक और भारतीय संविधान और संस्कृति की मूल भावना के अनुरूप है। आपने विगत दो दिनों में इस विषय पर कई धर्म–गुरूओं, चिन्तकों और विचारकों की बातें सुनी–समझी होंगी। मेरा मानना है कि किसी भी प्रकार का धार्मिक अतिवाद हमारी–सांस्कृतिक अस्मिता के लिए उचित नही है। 'धर्म' की बड़ी सीधी–सी परिभाषा है कि 'जो धारण

करने योग्य है, वही धर्म है', अर्थात् जो मानवीय अस्तित्व और मानवीय प्रकृति के अनुरूप है, वही सच्चा धर्म है। जो मानवीय संवेदना से नहीं जुड़ा हुआ है, मानवीय प्रकृति से जिसका लगाव नहीं है–वह धर्म हो ही नही सकता।

आज विश्व में 'भौतिकवाद' के बढ़ते प्रकोप और 'बाजारवाद' के फैलाव के फलस्वरूप, मानवीय संवेदना ही संकटग्रस्त होती जा रही है। एक आदर्श मनुष्य की कल्पना यही है कि उसके हृदय और मस्तिष्क का संतुलित रूप से समग्र विकास हुआ हो। हृदय में भावनाएँ पैदा होती हैं और मस्तिष्क में विचार जनमते हैं। एक पूर्ण मनुष्य भावना और विचार–दोनों ही रूपों में संतुलित होता है। धर्म आस्था से जुड़ी एक मानवीय प्रकृति है, विश्वासों पर आधारित एक आध्यात्मिक शक्ति है। जितने भी पंथ या सम्प्रदाय विश्व में प्रचलित हैं, सबका लक्ष्य मानवीय कल्याण ही है। सभी सम्प्रदायों का वास्तविक लक्ष्य यही होना चाहिए कि वे मनुष्य में सद्विचार जागृत करें, बृहत्तर मानवीय हितों के प्रति सजगता पैदा करें, सुख–शांति और आनंद के लिए किसी परमात्मा सत्ता में विश्वास रखते हुए मानवीय शक्ति के सदुपयोग का सही रास्ता दिखायें।

भारतवर्ष, जिसे 'विविधताओं से भरा एक खूबसूरत राष्ट्र' कहा गया है, में सभी धर्मों व सम्प्रदायों को मानने वाले लोग निवास करते हैं। सबको 'धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार' 'भारतीय संविधान' से ही प्राप्त है। बाबा साहब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर, जो 'भारतीय संविधान' के प्रमुख रचनाकार थे, ने भारतवर्ष की धार्मिकता पर विचार करते हुए कहा है कि–''धर्म को विज्ञान के समरूप होना चाहिए, अर्थात् धर्म को यदि कार्य करना है तो उसे सिर्फ हृदय नहीं, बुद्धि के भी अनुकूल होना होगा। धर्म में केवल नैतिक नियम बना देना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि

स्वतंत्रता, समानता और बंधुता जैसे सामाजिक सिद्धांतों पर भी उसे आधारित होना होगा। धर्म के जरिये मानवीय आचरण को संयत रखने तथा मानवीय प्रगति और कल्याण के मार्ग को प्रशस्त रखने का प्रयास होना चाहिए।'' डॉ॰ अम्बेडकर के इन विचारों का अभिप्राय यही है कि धर्म और नैतिकता की मर्यादा का हर हालत में पालन सुनिश्चित किया जाना ही मानवीय अस्तित्व और भविष्य के लिए श्रेयस्कर है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद 'भारतीय संविधान' के अनुच्छेद– 25, 26, 27 एवं 28 के माध्यम से ऐसी व्यवस्था की गई है कि राज्य किसी भी धर्म को अपनी ओर से प्रोत्साहित नहीं करेगा। धार्मिक प्रयोजन के लिए कोई कर नहीं वसूला जाएगा और न राजकीय शिक्षण संस्थानों में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जाएगी। संविधान की 'प्रस्तावना' में ही 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का समावेश कर दिया गया है। 'संविधान–सभा' में डॉ॰ अम्बेडकर जी ने भारत की धर्मनिरपेक्षता को विश्लेषित करते हुए कहा था कि ''धर्मनिरपेक्ष राज्य का कथन यह अर्थ नहीं प्रकट करता कि हमलोगों की धार्मिक भावना की ओर ध्यान ही नहीं देंगे। इसका अर्थ इतना ही है कि संसद देश के लोगों पर कोई धर्म लादने का अधिकार नहीं रखती।'' डॉ॰ अम्बेडकर जी के इन्हीं विचारों को विस्तार देते हुए भारत के महान दार्शनिक एवं पूर्व राष्ट्रपति डॉ॰ राधाकृष्णन जी ने कहा कि–''भारत राज्य वास्तविक धार्मिक राज्य है, जो सभी धर्मों के सार मानव–धर्म में विश्वास रखता है।''

भारत में अपने–अपने धर्मों में आस्था रखनेवाले विभिन्न धर्मावलम्बी एक साथ बसते हैं। अपने–अपने धर्मों के प्रति उनकी आस्था अटूट है। किन्तु साथ ही, अपने भारत देश के प्रति उनकी श्रद्धा कम नहीं। देश के स्वाभिमान, देश की मर्यादा और देश की सामासिक संस्कृति–इन सबमें भी उनकी अगाध आस्था है। भारत की सांस्कृतिक

और राष्ट्रीय एकता ही भारत की मूल पहचान है । राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का कथन है कि–''भारतीय संस्कृति का समन्वित स्वरूप चींटियों द्वारा एकत्रित अन्न के कणों की तरह नहीं है, अपितु, मधुमक्खियों द्वारा निर्मित मधु की तरह है, क्योंकि– एकत्रित अन्न के कणों में सबका अस्तित्व अलग–अलग दिख पड़ता है, किन्तु मधु में अलग–अलग फूलों के रसों का मिश्रण हो जाता है''। भारतीय संस्कृति का स्वरूप भी मधु की तरह है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का भी कथन है कि–''संसार के सभी धर्मों का सार एक ही है, क्योंकि वे एक ही ईश्वर से उत्पन्न तथा उसी में समाहित होते हैं। उनमें से सभी सत्य को व्यक्त करने वाले हैं, क्योंकि सभी एक ही दैवीय सत्ता से प्रेरित हैं। हिन्दुओं के समान ही ईसाई, मुस्लिम तथा पारसियों के पवित्र ग्रंथ भी देवत्व से प्रेरित हैं। कृष्ण में उतना ही देवत्व है, जितना जीसस और मोहम्मद में।''

भारत में अनेक आक्रमणकारी आए, अपनी–अपनी विविधता को लेकर, किन्तु सबको हमारी संस्कृति ने अपनी जीवन–दृष्टि से सँजोकर अपना बना लिया। साथ ही, सबको यह स्वतंत्रता प्राप्त थी कि अपने अनुकूल, अपनी आस्था के अनुरूप विविध धर्मों को वरण कर सकते हैं, उसके अनुकूल वातावरण का सृजन कर सकते हैं । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय संस्कृति में धर्मों का स्वरूप व्यक्तिगत भले ही रहा, किन्तु पारस्परिक कटुता कदापि नहीं रही। भारतीय संस्कृति की इस धार्मिक विशिष्टता ने सामाजिक सद्भावना को विकसित किया। हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, इस्लाम आदि सभी धर्मों का एक ही सार है–'परम तत्व की ओर अभिमुख होना'।

मित्रों, आज की संगोष्ठी का विषय –अंतर–धार्मिक संवाद या समझदारी कोई आधुनिक विचार नहीं है। पूर्व में भक्ति काल के कवियों

एवं सूफी आंदोलन ने इस विचार को सशक्त बनाया था और इस विचार ने अपनी जड़ें काफी गहरी जमा ली थी। निर्गुण संत कवि स्वामी दादूदयाल ने तो स्पष्ट रूप से कहा था–

''दोनों भाई हाथ–पग, दोनों भाई कान,

दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू व मुसलमान।''

इतिहास साक्षी है कि विभिन्न धार्मिक समुदायों में संवाद की हिमायत करने वालों ने अपनी आवाज को बुलंद किया है। उद्देश्य एक ही है–विभिन्न समुदायों के बीच आपसी समझ बढ़े, सामाजिक मेल–जोल और धार्मिक सहिष्णुता बढ़े, जिससे शान्ति को सही मायने में स्थापित किया जा सके। संवाद की सफलता के लिए जरूरी है कि हम एक–दूसरे की आलोचना से बचें, विचारों की विभिन्नता और किसी भी धार्मिक संघर्ष की गलत व्याख्या से बचें। किसी अप्रिय घटना या विचार को उदाहरण न बनाते हुए, धर्म के सकारात्मक स्वरूप को प्रचारित करें तथा प्रत्येक धर्म तथा उच्च विचार के प्रति सम्मान का भाव रखें। संवाद को जीवंत रखने हेतु समाज के उच्च तबकों को संकीर्ण दायरों से निकाल कर, धरती से जुड़े आम आदमी तक पहुँचने की जरूरत है। साधारण से दिखने वाले आम आदमी की अंतर्दृष्टि में कम दुराग्रह हो सकते हैं और नए समाज के निर्माण में हमें दुराग्रहों से बचने की जरूरत है। गौरतलब बात यह है कि यह संवाद सिर्फ दो धर्मों के बीच की बात–चीत नहीं होनी चाहिए; बल्कि इसे जीवंत एवं वस्तुनिष्ठ होने की आवश्यकता है, ताकि अलग–अलग धर्मों के अंतर को दार्शनिक स्तर पर समझा जा सके और उनके सुन्दर एवं कल्याणकारी स्वरूपों के प्रति संवेदना विकसित की जा सके। संवाद को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है– बिना किसी संदेह के, खुले मन एवं मस्तिष्क की सकारात्मकता के साथ पारस्परिक विश्वास को बढ़ाते हुए चिंतन किया

जाय, ताकि शांति की स्थापना की जा सके एवं मानवता की रक्षा हो सके।

आशा है कि अंतर धार्मिक– संवाद के उद्देश्य से आयोजित इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में समकालीन मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया होगा। मुझे उम्मीद है, शांति की खोज एवं समस्या के समाधान की राह में इन प्रयत्नों के सकारात्मक परिणाम सामने आयेंगे। एक सफल राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन के लिए मैं कुलपति व समस्त विश्वविद्यालय–परिवार तथा अन्य सभी आयोजकों को हार्दिक बधाई देता हूँ। आप सबको बहुत–बहुत धन्यवाद।

जय हिन्द!

***

प्रस्तुति–जन–सम्पर्क शाखा, राजभवन, पटना।